महाराष्ट्र जल नियामक प्राधिकरण के अनुभव

■ कल्पना दीक्षित*

महाराष्ट्र में 1990 से पेयजल के क्षेत्र में 'क्षेत्र सुधार' प्रारंभ किया गया। सन 2000 के बाद महाराष्ट्र सरकार ने विश्व बैंक से 'महाराष्ट्र जल क्षेत्र सुधार परियोजना' के लिए सहायता माँग कर इस प्रक्रिया को गति दी। इस परियोजना के तहत जलक्षेत्र की संपूर्ण पुनर्रचना सुझाने वाले अनेक नीतिगत और संस्थागत बदलाव प्रस्तावित थे। नीतिगत बदलाव का प्रतिबिंब 2003 में तैयार की गई 'राज्य जलनीति में दिखाई देता है। इस जलनीति में विभन्न स्तरों पर निजी क्षेत्र की सहभागिता बढ़ाने की आवश्यकता पर बल दिया गया। साथ ही, राज्य की भूमिका में परिवर्तन लाने, जल क्षेत्र की कार्यक्षमता तथा उत्पादकता बढ़ाने के लिए नई तकनीकों का उपयोग करने, जलक्षेत्र की व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण जैसे मूलभूत बदलावों का उल्लेख इस नीति में है। इस नीति ने पानी के उपयोग की प्राथमिकता तय करते समय पीने के पानी के बाद उद्योग को प्राथमिकता दी है। सिंचाई को तीसरा क्रम दिया गया है। पानी को एक आर्थिक वस्तु मानते हुए जिस भी तरीके से पानी के ज्यादा दाम मिले उसे 'उत्पादक' उपयोग माना गया है।

नीतिगत बदलाव के साथ ही महाराष्ट्र में जलक्षेत्र संबंधी नए कानून पारित किए गए। सन 2005 में सिंचाई प्रबंधन में किसानों का सहभाग बढ़ाने के लिए कानून बनाया गया। इसके तहत 'जल उपभोक्ता संस्थाएँ' बनाना आवश्यक हो गया। इसी वर्ष 'महाराष्ट्र जल नियमन प्राधिकरण' का गठन करने वाला कानून पारित किया गया। सन् 2007 में भूजल के उपयोग पर नियंत्रण हेतु राज्य सरकार ने विधेयक का मसौदा तैयार किया।

इस कानूनी बदलाव की प्रक्रिया के तहत जलक्षेत्र में अनेक नई संस्थाओं का गठन किया जा रहा है। राज्य स्तर पर नियामक प्राधिकरण के अलावा जनप्रतिनिधियों की 'राज्य जल परिषद' व प्रशासनिक अधिकारियों का 'राज्य जल मण्डल' बनाया गया। महाराष्ट्र में 5 नदी घाटी निगमों की भी पुनर्रचना सुझाई गई है। स्थानीय स्तर पर 'जल उपभोक्ता संस्था' और जलग्रहण क्षेत्र के स्तर पर 'ग्रामीण जल आपूर्ति समिति' बनाया जाना प्रस्तावित है। जलक्षेत्र के नियोजन की प्रक्रिया में भी बदलाव आ रहे हैं। महाराष्ट्र में प्रत्येक नदी घाटी की पृथक जल योजना बनाकर उनके आधार पर राज्य स्तरीय समन्वित राज्य जल योजना बनाना प्रस्तावित है। जल संसाधन नियोजन हेतु इस प्रकार की योजना महत्वपूर्ण है लेकिन विशेषज्ञों के अनुसार महाराष्ट्र की हर प्रमुख नदी पर इतने बाँध बनाए गए हैं कि अब नए सिरे से घाटी आधारित योजना बनाना मात्र दिखावा करना है।

संक्षेप में इस बदलाव की प्रक्रिया का मुख्य सूत्र है – जल क्षेत्र में राज्य की भूमिका में आमूलचूल बदलाव लाना। जलक्षेत्र के महत्वपूर्ण निर्णय और नियमन के लिए स्वायत्त नियामक प्राधिकरण, जल प्रदाय के लिए निजी क्षेत्र की भागीदारी और जलक्षेत्र प्रबंधन में लोगों की बढ़ती हिस्सेदारी से स्पष्ट है कि राज्य की भूमिका को मात्र सहायक (Facilitator) तक सीमित कर दिया गया है।

* लेखिका 'प्रयास' संस्था से जुड़ी हैं। उनका संपर्क पता है – बी–21, बी॰के॰ एवेन्यू, सर्वे 87/10 – अ, न्यू डी॰पी॰ रोड़ आज़ाद नगर, कोथरूड़, पुणे (महाराष्ट्र) 410 038, दूरभाष: 020-65615594, **email**: reli@prayaspune.org

महाराष्ट्र में जलक्षेत्र सुधार की प्रक्रिया

सन 2000 में सरकार ने राज्य की जलनीति और जल उपभोक्ता संस्थाओं संबंधित कानूनी प्रारूपों पर सुझाव माँगें। इसके लिए राज्य में 6 स्थानों पर क्षेत्रीय कार्यशालाओं का आयोजन कर स्वयंसेवी संगठनों, विशेषज्ञों और आम नागरिकों से सुझाव माँगने की प्रक्रिया चलाई गई। नियामक प्राधिकरण का विधेयक सन 2004 में पहली बार विधानसभा में प्रस्तुत किया गया। उस समय हुई इसकी कड़ी आलोचना के कारण इसे समीक्षा हेतु राज्य विधानसभा के दोनों सदनों की संयुक्त समिति को सौंप दिया गया था। समिति ने इस प्रारूप को अंतिम रूप देने से पहले फिर एक बार लोगों से सुझाव माँगें।

इस तरह सरकार के अनुसार कानून निर्माण की यह प्रक्रिया जनभागीदारी से क्रियांन्वित की गई। मध्यप्रदेश में जल नियामक आयोग का मसौदा विधेयक माँग करने पर भी सरकार ने अभी तक लोगों को उपलब्ध नहीं कराया है। इस प्रकार, पारदर्शिता की दृष्टि से महाराष्ट्र सरकार द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया महत्वपूर्ण लगती है। लेकिन, इस प्रक्रिया में भी निम्न खामियाँ थी जिनकी वजह से ये प्रक्रिया सफल नहीं हो पाई –

1. विशेषज्ञों और आम नागरिकों से प्राप्त अनेक महत्वपूर्ण सुझावों का समावेश सरकार ने अंतिम मसौदे में नहीं किया। इनमें से कई सुझाव पानी के उपयोग में समानता लाने के लिए महत्वपूर्ण थे।
2. कार्यशाला के बाद विभिन्न सुझावों पर सरकार द्वारा क्या कार्रवाई की गई इसकी सूचना तक सहभागियों को नहीं दी गई। यहाँ तक सहभागियों को मीटिंग के कार्यवृत्त भी नहीं दिए गए। जब हमने इन क्षेत्रीय कार्यशालाओं का विवरण पाने की कोशिश की तो शासकीय संस्थाओं ने हमारी माँग टाल दी। बैठक में जो व्यक्ति सहभागी थे उनके द्वारा माँग करने पर भी विवरण उपलब्ध नहीं हो सका। अंत में ये विवरण पाने के लिए हमें 'सूचना के अधिकार' का प्रयोग करना पड़ा। फिर भी शासकीय विभाग से प्राप्त विवरण संतोषजनक नहीं था।
3. सरकार ने कोई खास सुझाव स्वीकारने अथवा नकारने की कोई वजह नहीं बताई। इस तरह जनसहभागिता की प्रक्रिया केवल एकतरफा हुई। सहभागी समूहों को मसौदा विधेयक दिखाने की औपचारिकता भर हुई।

जन भागीदारी की इस प्रक्रिया में गंभीर खामियाँ होने की वजह से समाज के जागरूक और सक्रिय समूहों में भी जलक्षेत्र की पुनर्रचना के बारे में अनभिज्ञता है। नियामक प्राधिकरण कानून पारित होने के 2 वर्ष बाद हमने कई राजनैतिक दलों के नेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं और पत्रकारों से इस कानून के बारे में पूछा तो अधिकतर लोगों को इस कानून की जानकारी नहीं थी। जिन पर इस बदलावों का गहरा असर होने वाला है उन आम नागरिकों को आज भी इस गतिविधि की कोई जानकारी नहीं है। जलक्षेत्र में इतने बड़े बदलाव होने के बावजूद इलेक्ट्रानिक मीडिया या समाचार पत्रों में इसकी कोई सुर्खियाँ नहीं है। इससे तथाकथित जनसहभागी प्रक्रिया का पर्दाफाश हुआ है। अपर्याप्त जानकारी, सार्वजनिक बहस से कन्नी काटना और समाज के सभी समूहों तक पहुँचने में सरकार की असफलता से सिद्ध हो गया है कि यह सब भी विश्व बैंक की 'जनभागीदारी' की शर्त पूरी करने की कवायद मात्र थी। वास्तव में यह दावा ही खोखला है कि ऐसी प्रक्रिया से लोगों की प्राथमिकताएँ सरकार तक पहुँचेगी और जलक्षेत्र में सुधार आएगा। नियामक प्राधिकरण कानून जिस तरह से पारित किया गया वह जनतांत्रित सिद्धांतों के खिलाफ है। सुधारित विधेयक 2005 में विधानसभा सत्र के अंतिम दिन शाम 6 बजे प्रस्तुत कर बगैर बहस के पारित करवा लिया गया। उस दिन विधानसभा में कुल 16 विधेयक पारित करवाए गए। पर्याप्त समय नहीं होने के कारण इतने विधेयक पढ़ने का भी समय नहीं था तो फिर चर्चा तो दूर की बात है। विधानपरिषद् में भी इसी प्रकार यह विधेयक पारित करवाया गया।

महाराष्ट्र की इस प्रक्रिया से सीख

1. चूँकि 'जनसहभागी प्रक्रिया' के कोई मानक हमारे यहाँ स्थापित नहीं हुए हैं। चंद विशेषज्ञ और स्वयंसेवी संगठनों के साथ चलाई गई परामर्श की प्रक्रिया को कई बार जनसहभागिता कहा जाता हैं। कई बार इस प्रक्रिया में शामिल विशेषज्ञ और संगठनों का सामाजिक आधार और संख्या सीमिति होती है।

2. 'जनसहभागिता की कोई प्रक्रिया निर्धारित नहीं होने के कारण सरकार को इसके लिए दोषी ठहराना मुश्किल हो जाता है। लेकिन देखने में आया है कि ज्यादा से ज्यादा लोगों का सहभाग सुनिश्चित करना, प्राप्त सुझावों और आपत्तियों पर कार्रवाई करना और लिए गए निर्णयों के प्रति जवाबदेही जैसी जनसहभागी प्रक्रिया की सरकार द्वारा अनदेखी की जाती है।

3. सरकार द्वारा 'जनसहभागी प्रक्रिया' को गंभीरता से नहीं लिए जाने के कारण आम आदमी, कार्यकर्ता और सामाजिक संगठनों में इस प्रक्रिया के प्रति उदासीनता होती है। सरकारी जनहभागिता की प्रक्रिया को दिखावा मात्र मानते हुए सामाजिक समूह तथा आम आदमी इसे शासकीय निर्णयों की बेहतरी के सुझाव के रूप में न देखकर समय की बर्बादी मानते हैं। इस प्रक्रिया को गंभीरता से नहीं लेने के कारण कई बार सामाजिक समूह अपने विश्लेषणों को ठोस सुझाव में परिवर्तित करने में रूचि नहीं लेते।

ऐसे में मध्यप्रदेश के समूहों द्वारा नियामक आयोग के मसौदे पर जनसहभागी प्रक्रिया चलाने की माँग महत्वपूर्ण है। लेकिन, महाराष्ट्र के अनुभव से लगता है कि इस माँग के संदर्भ में 'जनसहभागी प्रक्रिया' के तौर–तरीके पर विचार किया जाना चाहिए।

महाराष्ट्र नियामक आयोग का स्वरूप

नियामक प्राधिकरण के तीन सदस्य है। प्राधिकरण का अध्यक्ष सेवानिवृत मुख्य सचिव या उसके स्तर का व्यक्ति होगा। अन्य दो सदस्यों में से एक जल अभियांत्रिकी और दूसरा जल आर्थिक विशेषज्ञ होंगा। तीनों सदस्यों का कार्यकाल 3 साल का होगा और सभी निर्णय बहुमत से लिए जाएँगें। इसके अतिरिक्त प्राधिकरण राज्य की 5 नदी घाटियों से 5 विशेषज्ञों को सलाकार के रूप में नियुक्त कर सकता है। इन सलाहकारों को मतदान का अधिकार नहीं है।

नियामक प्राधिकरण में नियुक्ति हेतु वरिष्ठ नौकरशाहों की चयन समिति है। इस समिति के सुझाव पर राज्यपाल प्राधिकरण के सदस्यों की नियुक्ति करते हैं।

'प्रयास' ने जल नियामक आयोग और विद्युत नियामक आयोग दोनों का अध्ययन किया है। विद्युत नियामक आयोग में सेवानिवृत न्यायधीश को अध्यक्ष बनाया गया है जबकि नियामक प्राधिकरण में सभी नौकरशाह शामिल है। 2003 में पारित केन्द्रीय विद्युत अधिनियम के विरूद्ध महाराष्ट्र जल नियामक प्राधिकरण के कानून में सामाजिक समूहों और आम जनता के हस्तक्षेप के लिए कोई जगह नहीं है। यह बड़ी खामी है। महाराष्ट्र जल नियामक आयोग के कानून में पारदर्शिता और जनसहभागिता के लिए पर्याप्त प्रावधान न होने के कारण नियामक आयोग को जिम्मेदार ठहराना मुश्किल है। नियामक आयोग के व्यापक अधिकारों के कारण महाराष्ट्र के जलक्षेत्र में इसके गंभीर और दूरगामी परिणाम होंगें। महाराष्ट्र के नियामक तंत्र को कई राज्य आदर्श के रूप में देखते हैं इसलिए इस तंत्र के ढाँचे और स्वरूप का पर्याप्त विश्लेषण जरूरी है।

1. महाराष्ट्र के कानून से भविष्य में जल क्षेत्र की निर्णय प्रक्रिया नौकरशाहों के हाथों में केन्द्रित हो जाने की आशंका है। सवाल यह है कि क्या नौकरशाहों और तकनीकशाहों से बना नियामक तंत्र स्वायत्त हो भी सकता है?

2. जल नियामक आयोग को अनेक ऐसे अधिकार सौंपे गए हैं जो किसी लोकतांत्रिक तरीके से निर्वाचित जनप्रतिनिधियों के होते हैं। लेकिन नियामक को जनप्रतिनिधियों और आम जनता के प्रति जवाबदेह बनाने का कोई प्रावधान नहीं है। यह जनतांत्रिक निर्णय प्रक्रिया के खिलाफ है।

3. जल नियामक आयोग को सौंपे गए कामों का स्वरूप बहुत ही व्यापक और संवेदनशील है। इसे विभिन्न प्रकार के काम सौंपे गए हैं। तीन लोगों की तकनीकी और आर्थिक विशेषज्ञता इसके लिए पर्याप्त नहीं है।

4. जल नियामक आयोग जैसी प्रशासनिक अधिकारियों के समूह को अर्ध न्यायायिक भूमिका सौंप दी गई है। इस तंत्र को अर्ध न्यायिक कार्यप्रणाली का पुर्वानुभव नहीं होता है जिससे जलक्षेत्र की व्यवस्था पर इसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं।

5. स्वायत्त नियामक आयोग का कानून अमेरिका में उन्नीसवीं सदी में बना। अधिकांश विकासशील देशों द्वारा इस कानून को अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय एजेंसियों के दबाव में स्वीकारा गया। विकासशील देशों नें इन वित्तीय एजेंसियों से कर्ज पाने के लिए और निजी निवेशकों को निर्णय प्रक्रिया के निष्पक्ष होने का विश्वास दिलाने के लिए एक शर्त के रूप में इसे स्वीकारा है। इसी कारण पारदर्शी प्रक्रिया और आयोग को जवाबदेह ठहराने जैसे प्रावधान हाँशिए पर रखे गए। विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक परिस्थिति और नागरिक समुदाय का स्वरूप जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों की भी अनदेखी की गई।

चूँकि मध्यप्रदेश में जलनियामक आयोग अभी गठित नहीं हुआ है, इसलिए स्थानीय समुदाय एवं समूहों के लिए मौका है कि वे जलक्षेत्र के लिए उचित नियमन प्रारूप पर विचार करें। पानी का विकेन्द्रीकृत स्वरूप, जल क्षेत्र में स्थापित हितसंबंध और आर्थिक विकास की प्रक्रिया में पानी की अहम भूमिका को देखते हुए इस क्षेत्र का नियमन बहुत ही महत्वपूर्ण हो जाता है। स्वतंत्रता के बाद भारत में जलक्षेत्र का विकास जिस प्रकार से हुआ उससे राज्य निययंत्रित प्रारूप की कई खामियाँ सामने आई है। इन खामियों पर विचार जरूरी है। लेकिन इस समय इस बात पर बहस जरूरी है कि इस परिस्थिति में क्या 'स्वायत्त नियामक आयोग का प्रारूप सर्वोत्तम विकल्प है?